न्यायपालिका और हिन्दी: अवरोध और चुनौतियाँ

लोकतांत्रिक सरकार के तीन अंग हैं = विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। इनमें न्यायपालिका की अहम एवं सशक्त भूमिका रहती है। लोकतंत्र की सफलता मजबूत और स्वतंत्र न्यायपालिका पर आधारित होती है। इस के लिए सजग और सतर्क रूप से न्याय व्यवस्था का विकास करने की आवश्यकता होती है। न्यायपालिका की सहायता के लिए जागरूक विधायिका की ज़रूरत होती है जो समाज के सर्वांगीण विकास और कल्याण के लिए विधि-निर्माण करती है ताकि कार्यपालिका उन क़ानूनों का पालन करते हुए देश में सुशासन और प्रबंधन ईमानदारी से कर सके। देश और समाज में कानून और व्यवस्था के पालन के लिए न्याय व्यवस्था एक कारगर साधन के रूप में काम करती है। इस न्याय वावस्था के प्रति सामाजिक जागरूकता होना ज़रूरी है, जिससे समाज उसे ठीक तरह से समझ सके और उसकी सही रूप से पालन कर सके। इस लिए जनता को न्याय दिलाने के लिए जनता की अपनी भाषा की विशेष भूमिका रहती है। भाषिक दूरी से कानून को समझने के रास्ते में कई प्रकार की कठिनाइयाँ और अड़चनें आती हैं। अत: न्याय व्यवस्था का अनुपालन और कानून का सार्थक कार्यान्वयन तभी सही रूप से संभव हो पाए गा, यदि इनमें अपनी भाषा, राजभाषा अथवा राष्ट्रभाषा का प्रयोग किया जाए। जन-सामान्य तक त्वरित और निष्पक्ष न्याय सुलभ कराने के लिए अपनी भाषा का होना अनिवार्य है। 'रूल ऑफ लॉ' सभ्य समाज की आत्मा होता है और कानून से ही देश की न्याय-व्यवस्था मजबूत होती है, सुशासन सशक्त बना रहता है जिससे राष्ट्र का विकास संभव हो पाता है।

प्राय : यह कहा जाता है कि कानून अंधा है अर्थात न्याय की देवी ने आँखों पर पट्टी बांध रखी है। आज़ादी से पहले भारत माता जंजीरों से जकड़ी हुई थी। किंतु स्वतंत्रता के बाद भारत माता परतंत्रता की जंजीरों से तो मुक्त हो गई लेकिन उसके मुँह पर अंग्रेज़ी की पट्टी बांध दी गई है ताकि वह गूंगे, मूक और बेज़ुबान की भाँति चुपचाप सब कुछ देखती रहे और कुछ भी बोल न सके कि उसके सामने क्या हो रहा है। अब समय आ गया है कि भारत माता के मुँह को अंग्रेज़ी के पाश से छुड़ाया जाए, तभी न्याय की देवी की आँखों से पट्टी हट पाए गी और न ही बेज़ुबान तथा गूँगा होगा लोकतंत्र। अब भारत को उसकी अपनी ज़ुबान चाहिए, अपनी भाषा चाहिए, न कि विदेशी भाषा चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो न्यायतंत्र खुले नेत्रों से न तो न्याय दे पाए गा, न ही दूसरों की भाषा में कुछ समझा पाए गा और न ही लोकतंत्र को अपनी अभिव्यक्ति देने की स्वतंत्रता मिल पाए गी।

इसी स्थिति के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार अपना दर्द व्यक्त करते हुए कहा था, यह क्या कम ज़ुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इन्साफ़ पाना है तो मुझे अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग करना पड़े। उन्हों ने दु :खी हो कर आगे कहा कि बैरिस्टर होने पर भी मैं अपनी भाषा ही न बोल सकूँ। दूसरे आदमी को मेरे लिए तर्जुमा कर देना चाहिए। यह कुछ दंभ है ? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है ? इसमें मैं अंग्रेज़ी का दोष निकालूँ या अपना ? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेज़ी जानने वाले लोग हैं।

हमारे देश में संसद, राज्य विधान सभाएँ, विधि एवं न्याय मंत्रालय तथा पंचायत से ले कर उच्चतम न्यायालय तक न्याय-व्यवस्था के प्रमुख अंग हैं, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इनमें देश की अपनी हिन्दी का प्रयोग नहीं होता। वास्तव में अखिल भारतीय न्याय व्यवस्था के लिए संविधान में जो संतुलित और सुव्यवस्थित भाषा नीति बनाई गई है, उनपर न तो गंभीरता से विचार किया गया और न ही परीक्षण करने की आवश्यकता समझी गई। इसी कारण विधि कॉलेजों के भाषा-प्रश्न की ओर सोचा ही नहीं गया जो विधि व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संविधान का अनुच्छेद 120 लोक सभा में प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त संविधान के 17वें भाग के अनुच्छेद 348 में स्पष्ट रूप से यह व्यवस्था की गई है कि लोक सभा की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी में होगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अनुच्छेद 120 में दी गई व्यवस्था के होते हुए अनुच्छेद 348 के अधीन कार्य चले गा अर्थात लोक सभा की कार्यवाही या तो हिन्दी में होगी या अंग्रेज़ी में। इसके साथ यह भी व्यवस्था है कि यदि कोई सांसद अपना वक्तव्य हिन्दी या अंग्रेज़ी में अच्छी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकता तो वह अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित कर सकता है, लेकिन उसे इसके लिए लोकसभा के अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति से या उस समय सदन के पीठासीन अधिकारी से, जैसी भी स्थिति हो, सहमति लेनी होगी। इससे स्पष्ट है कि मातृभाषा को महत्व दिया गया है, क्योंकि सदस्य अपनी मातृभाषा में सहजता से अच्छी अभिव्यक्ति कर सकता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अगर सांसद मातृभाषा की अपेक्षा अपनी प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषा में अच्छी अभिव्यक्ति कर सकता है, तो फिर भी उसे अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करने के लिए अध्यक्षता करने वाले अधिकारी की सहमति या अनुमति मिले गी। इसका यह भी आशय हो सकता है कि संविधान-निर्माताओं ने प्रादेशिक भाषा और मातृभाषा में अंतर न कर उन्हें एक ही श्रेणी में रखा हो, जिसे सत्तारूढ़ दल ने या तो समझा नहीं है या समझने का प्रयास ही न किया हो अन्यथा संसद मातृभाषा के साथ-साथ प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषा को जोड़ सकती थी। दूसरा, अनुच्छेद 120 के अनुसार यदि संसद से अंग्रेज़ी हटा दी जाती है तो इसका आशय होगा कि सांसद को अब हिन्दी में अच्छी अभिव्यक्ति न कर पाने के कारण अपनी मातृभाषा में बोलने की सहमति अध्यक्ष या अधिकारी से लेनी होगी। अनुच्छेद 120 की उपधारा में यह प्रावधान भी है कि संविधान के लागू होने के 15 वर्ष की समाप्ति पर अर्थात 26 जनवरी 1965 के बाद अगर कोई विधेयक पारित न हुआ तो अनुच्छेद 120 से अंग्रेज़ी शब्द अपने-आप निकला गया माना जाए गा। लेकिन दुर्भाग्य से संसद में राजभाषा अधिनियम 1963 में संशोधन किया गया जिसमें पहले की व्यवस्था ही रखी गई कि अंग्रेज़ी तदनुसार संसद के कामकाज में पहले की तरह बनी रहे गी। इस प्रकार अनिश्चित काल के लिए संसद में द्विभाषिक स्थिति बनी हुई है।

संविधान में ऐसा कोई विशेष अनुच्छेद नहीं है जिसमें उच्चतम न्यायालय की भाषा का निर्देश दिया गया है। इसके अलावा अनुच्छेद 343 में अंग्रेज़ी के बारे में 15 वर्ष की जो अवधि रखी गई थी वह उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय पर लागू नहीं होती, क्योंकि इन न्यायालयों के संबंध में कोई कालावधि नहीं रखी गई। इसका आशय यह भी हो सकता है कि विधि के अनुसार संसद की इच्छा पर, किंतु वास्तविकता के आधार पर संघ के मंत्रिपरिषद अर्थात प्रधान मंत्री की इच्छा पर यह बात छोड़ दी गई हो कि कब ऐसा कानून बनाया जाए जिससे उपर्युक्त मामलों में अंग्रेज़ी भाषा के स्थान पर हिन्दी

भाषा को रखा जाए। अनुच्छेद 348 से यह झलकता है कि अंग्रेज़ी-समर्थकों की अंदरूनी इच्छा थी कि संघ के राजकाज के लिए अंग्रेज़ी भाषा को सदैव बनाए रखा जाए।

इस प्रावधान के कारण जिन राज्यों में अंग्रेज़ी का प्रयोग नहीं भी होता था, उनमें भी वैधानिक रूप से अंग्रेज़ी को विधि और न्याय की भाषा के रूप में अनिवार्य कर दिया गया। इसी अनुच्छेद के खंड (3) में यह व्यवस्था की गई कि यदि किसी राज्य का विधान मंडल अंग्रेज़ी से भिन्न भाषा में कानून बनाता है अथवा उस राज्य का राज्यपाल अंग्रेज़ी से भिन्न भाषा में अध्यादेश जारी करता है तो उस अध्यादेश या कानून का अंग्रेज़ी अनुवाद राज्यपाल के प्राधिकार से उस राज्य के राजपत्र में प्रकाशित किया जाए गा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हिन्दी के संघ की राजभाषा घोषित होने के बावजूद नियमों-विनियमों, क़ानूनों, अध्यादेशों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेज़ी में ही माने जाएँ गे, जब तक संसद इस बारे में कोई अन्य प्रावधान पारित नहीं करता।

यही कारण है कि अंग्रेज़ीदाँ लोग इस बात पर तुले हुए थे और आज भी हैं कि जहाँ तक संभव हो स्वतंत्र भारत में कानून और न्याय की भाषा अंग्रेज़ी को ही बनाए रखा जाए। यह भी उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 345 में राज्यों को यह प्राधिकार दिया गया है कि वह जनता द्वारा बोले जाने वाली भाषा या हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपना सकती है। यह सही है कि कोई भी राज्य अपनी भाषा की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिए वह अपनी भाषा के साथ हिन्दी को भी दूसरी भाषा के रूप में अपना सकता है। वस्तुत : गुजरात राज्य के अलावा अन्य किसी राज्य ने हिन्दी को अपनी दूसरी भाषा के रूप में नहीं अपनाया। यह भी दुर्भाग्य है कि किसी भी राजनैतिक दल या राजनेता ने इस बारे में विचार ही नहीं किया। विधि मंत्रालय ने भी यही सोचा कि इस बारे में कौन मुसीबत ले।

उच्चतम न्यायालय को समूचे देश के लिए एक इकाई के भाँति काम करना होता है। इस लिए उसे अपनी कार्यवाही एवं विवेचना करने के साथ-साथ न्याय-निर्णय, डिक्री, आदेश आदि देने के एक ही भाषा का प्रयोग करना पड़ता है और वह है अंग्रेज़ी। इस संबंध में अगर संसद कानून बनाती है तभी उच्चतम न्यायालय में हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले पाए गी। इस संबंध में कुछ विधि-विशेषज्ञों में मतभेद है। उनका कथन है कि उच्चतम न्यायालय में हिन्दी का प्रयोग तभी संभव है, अगर देश के सभी उच्च न्यायालयों में हिन्दी के प्रयोग का प्रावधान हो। अगर उच्च न्यायालयों या निचली अदालतों में अपनी भाषा में निर्णय, डिक्री, न्याय आदि देने का प्रावधान किया जाता है तो उनके द्वारा हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने पर उन अनूदित पाठों के आधार पर कानून का और कार्यवाहियों का स्पष्टीकरण करने या उनकी व्याख्या करने में ही उच्चतम न्यायालय का बहुत समय लग जाए गा।

उच्चतम न्यायालय में एक भाषा हिन्दी के प्रयोग के संबंध में आंध्र प्रदेश के पूर्व मुख्य न्यायाधीश और हिंदीतर भाषी स्वर्गीय गोपाल राव एकबोटे ने अपना मत (राष्ट्रभाषा विहीन राष्ट्र, 1987) देते हुए यह कहा है कि अगर देश की समूची न्याय प्रणाली में एकत्व स्थापित किया जाता है और समूचे देश में कानून के निर्माण में और उच्च न्यायालयों तथा निचली अदालतों के न्याय, निर्णय, डिक्रियों, आदेशों आदि के लिए एक ही माध्यम या भाषा होती है तभी देश की न्याय-व्यवस्था को एकसंघीय ढांचे में लाया जा सकता है । न्यायाधीश एकबोटे के इस मत के अनुसार उच्चतम न्यायालय में हिन्दी का प्रयोग संभव तो है, लेकिन इसमें बहुत-सी कानूनी पेचीदगियाँ उठ खड़ी होंगी या खड़ी की जाएँ गी।

इस लोकतांत्रिक और बहुभाषी भारत में हिंदीतर भाषी राज्य अड़चनें पैदा कर सकते हैं और इसी कारण सत्तारूढ़ दल इस मामले में हाथ डालने से कतराते है। हालांकि संसदीय राजभाषा समिति ने भी संकल्प संख्या 1/20012/4/92 रा भा (नी-!) की मद संख्या 5(13) में अपनी रिपोर्ट में सिफ़ारिश की है कि अब उच्चतम न्यायालय में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत होना चाहिए। प्रत्येक निर्णय दोनों भाषाओं में उपलब्ध हो। साथ ही समिति ने मद संख्या 5(14) में भी कहा है कि उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और अन्य अधिकारियों को अपने प्रशासनिक और न्यायिक कार्यों में हिन्दी का प्रयोग करने के संबंध में प्रोत्साहित करने के लिए एक योजना शुरू की जानी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित आदेश भी निकले हैं, किंतु विडंबना यह है कि इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी इस पर अभी तक न तो कोई कार्रवाई की गई है और न ही विचार किया गया है।

अनुच्छेद 348 की उपधारा (2) के अधींन कुछ राज्यों के राज्यपालों के आदेश से उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियों में हिन्दी का प्रयोग अधिकृत हो गया है। कुछ राज्यों के उच्च न्यायालयों में अंग्रेज़ी के साथ-साथ अपनी प्रादेशिक भाषा का प्रयोग भी अधिकृत है। सन् 1950 में राजस्थान सरकार, 1970 में उत्तर प्रदेश सरकार, 1971 में मध्य प्रदेश सरकार और 1972 में बिहार सरकार के अनुरोध पर भारत सरकार ने उनके उच्च न्यायालयों में हिन्दी प्रयोग को अधिकृत किया था। इन राज्यों में हिन्दी के अलावा अंग्रेज़ी के प्रयोग का भी प्रावधान है। इसके अतिरिक्त निम्न एवं माध्यमिक न्यायालयों में अंग्रेज़ी के स्थान पर प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति तो बढ़ रही है, लेकिन अंतिम निर्णय, न्याय, डिक्रियाँ आदि अंग्रेज़ी में जारी करने की प्रथा अभी भी प्रचलित है।

इधर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसलों के हिन्दी अनुवाद की व्यवस्था करने के लिए हरियाणा सरकार और पंजाब सरकार भी विचार कर रही हैं। उच्चतम न्यायालय ने भी अपने निर्णय हिन्दी और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने की व्यवस्था की है। इसी संबंध में माननीय राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने भी केरल उच्च न्यायालय की हीरक जयंती के अवसर पर 28 अक्तूबर, 2017 को कहा था कि अदालत के फैसले अंग्रेज़ी में दिए जाते हैं जबकि हमारा देश अनेक भाषाओं का देश है। इसलिए एक ऐसी व्यवस्था की जाए जिसमें उच्च न्यायालयों के अपने न्याय-निर्णयों का प्रमाणित अनुवाद स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाए। जनता को न्याय देना महत्वपूर्ण है लेकिन वह वादी और प्रतिवादी की भाषाओं में दिया जाए ताकि जो न्याय दिया गया है वह उनकी समझ मे आ जाए। वास्तव में न्यायालयों में अनिवार्य रूप से अंग्रेज़ी में निर्णय देने के कारण जन सामान्य को देरी से न्याय मिलता है, जो नितांत चिंता का विषय है।

इसके अतिरिक्त जिन लोगों को न्याय मिलता भी है तो उसे यह पूरी तरह से मालूम नहीं होता कि उसने अपने मुकदमे में जो दस्तावेज़ अथवा कागज-पत्र दाखिल किए हैं, उनमें क्या लिखा है। उसके मुकदमे में वकीलों में जो बहस हुई थी, उसमें क्या-क्या तर्क दिए गए थे, क्या वे तर्क सही भी थे और अंत में जो फैसला हुआ, उसमें क्या-क्या कहा गया है ? उसे वकील के भरोसे रहना पड़ता है और वकील अंग्रेज़ी के भरोसे रहता है। इस लिए जब तक न्यायपालिका में अंग्रेज़ी का वर्चस्व रहता है तब तक देश के गरीब, पिछड़े, दलित, वंचित, मजदूर और ग्रामीण किसान सबसे ज्यादा हानि उठाते रहेंगे। एक तो उन्हें फैसला

देर से मिलता है, दूसरा उनका पैसा भी बहुत खर्च होता है और तीसरा मुकदमे के फैसले की पूरी जानकारी भी उन्हें नहीं मिल पाती। राष्ट्रपति जी की यह चिंता वाजिब है कि अंग्रेज़ी के वर्चस्व से गरीब जनता और भारतीय भाषाओं के साथ व्यवहार नहीं हो पा रहा, अत : न्यायालयों के निर्णय का अनुवाद उनकी भाषाओं में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाए। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट करना असमीचीन नहीं होगा कि विधि अर्थात कानूनी भाषा तकनीकी-प्रधान भाषा है और इसी कारण यह भाषा अन्य विषयों की भाषा की अपेक्षा अधिक एकार्थी, जटिल और विशिष्ट होती है। इसकी शब्दावली और व्याकरणिक संरचना अपनी अलग विशिष्टता रखती है, इस लिए दूसरी भाषा में अनुवाद करने से अशुद्धि और संदिग्धता की संभावना प्राय : बनी रहती है। यदि मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा में न्याय, निर्णय आदि दिया जाए तो वह शुद्ध और असंदिग्ध हो गा। इस लिए अनुवाद की व्यवस्था कानूनी भाषा में पूरी तरह से कारगर भूमिका नहीं निभा पाए गी। केवल यही नहीं, न्यायालय के अंग्रेज़ी में दिए गए निर्णय की अपेक्षा उसके अनुवाद में और अधिक विलंब होने की पूरी-पूरी संभावना है, क्योंकि अंग्रेज़ी में दिए गए निर्णय के सटीक एवं सही अनुवाद में और समय लगे गा। साथ ही, अनुवाद के लिए अधिक धन खर्च करने की व्यवस्था भी करने होगी जो अंतत : जनता पर ही पड़े गा।

सिविल कोर्ट, ज़िला कोर्ट, विशेष न्यायालय के अतिरिक्त संसद तथा राज्य विधान सभाओं के विधेयक द्वारा गठित राजस्व, आबकारी, बिक्रीकरण, सहकारी आदि अधिकरण एवं न्यायाधिकरण की कार्यवाहियों, न्याय-निर्णयों, आदेशों तथा डिक्रियों के भाषा-माध्यम का प्रश्न भी विचारणीय है। दंड प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) में भी व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 345 के अंतर्गत राज्य विधान मंडलों को अनुमति दी गई है कि वे कानून बना कर एक से अधिक भाषाओं को अथवा हिन्दी को अपने सभी या किन्हीं सरकारी कामकाज में लागू कर सकते हैं। इसके साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) की धारा 137 के उस दफा पर विचार करना होगा जिसमें न्यायालयों की वह भाषा जारी रहे गी जो इस कोड के लागू होने के समय लागू हुई थी। इससे राज्य सरकार को किसी दूसरी भाषा का प्रयोग करने के बारे में निर्देश देने का अधिकार प्राप्त होता है। राज्य सरकार यह घोषणा कर सकती है कि इस प्रकार के न्यायालय की भाषा क्या हो, किस लिपि में आवेदन पत्र आदेश दिए जा सकते हैं और न्यायालय की कार्यवाही आदि के लिए किस भाषा का प्रयोग किया जाए।

न्यायपालिका के सबसे निचले सोपान अर्थात ग्राम पंचायत के लिए स्थानीय भाषा के प्रयोग का प्रावधान है। संविधान के अनुच्छेद के अंतर्गत कुछ ग्राम-पंचायतों को दीवानी तथा फ़ौजदारी न्याय संबंधी सीमित अधिकार मिले हुए हैं। ऐसे न्यायालयों अर्थात ग्राम-पंचायतों को भी अपना निर्णय स्थानीय भाषा में देने का प्रावधान है।

संविधान-निर्माताओं ने न्यायपालिका की भाषिक आवश्यकताओं के निर्धारण के लिए संविधान में जो संकल्पना रखी थी, उससे स्पष्ट होता है है कि कुछ कालावधि तक अंग्रेज़ी में और बाद में अंतत : हिन्दी में ही काम करना होगा। यह व्यवस्था निचली अदालतों से ले कर उच्चतम न्यायालय की कार्यवाहियों में लागू हो सकती है। इससे केंद्र और राज्य दोनों की न्याय प्रणाली में ऐक्य लाने में सहायता मिले गी। जब कभी भारतीय ज़िला न्यायधीशों के संवर्ग (Cadre) का गठन किया जाए गा अथवा वह अस्तित्व में आए गा तभी अखिल भारतीय न्याय सेवाओं में भाषिक एकात्मकता स्थापित होगी। इससे भारतीय

भाषाओं अर्थात प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय भाषाओं में न्यायालयों की कार्यवाही हो पाए गी। संविधान सभा की तदर्थ समिति के सदस्य के रूप में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने यह टिप्पणी दी थी कि उच्चतम न्यायालय के कानून विषयक एक ही व्याख्या करने और एक ही प्रभाव बनाए रखना आवश्यक है। न्यायालयी एकात्मकता और राष्ट्रीय एकता के लिए कानूनी एकात्मकता और एक-सी व्याख्या प्रभावी सिद्ध होगी और देश की संघीय पद्धति सहज तथा सरल होगी। संविधान सभा की प्रारूप समिति के संयोजक डॉ. भीम राव अंबेडकर ने इस बात पर बल देते हुए कहा था कि संविधान ने एकसंघीय न्याय-प्रणाली की व्यवस्था की है और दीवानी या फ़ौजदारी मामलों में उठने वाली समस्याओं को अधिकार पद्धति मे रख कर तथा उसमें परिष्कार करने के लिए उसे प्राधिकृत भी किया है। मुंशी जी और डॉ अंबेडकर की इन भावनाओं का आदर न करना और जानबूझ कर उनकी गलत व्यख्या करना वास्तव में देश का अहित करना है।

यह कल्पना करना पूर्णतया गलत है कि न्यायपालिका के सभी सोपानों में या स्तरों में अर्थात पंचायत से उच्चतम न्यायालय तक भविष्य में अंग्रेज़ी अनंत काल तक चलती रहे गी। लेकिन इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्तमान न्याय प्रणाली में जो भाषिक प्रक्रिया विद्यमान है उसमें पूर्ण रूप से परिवर्तन लाने की नितांत आवश्यकता है। इसके लिए सरकार में पहले दृढ़ संकल्प होना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए उसे अत्यधिक प्रयास करने पड़ें गे और सुविचारित योजना बनानी पड़े गी। इस अभियान में राजनीतिक दलों को भी पूरा-पूरा सहयोग देना पड़े गा। केंद्र और राज्य सरकारों में हिन्दी के प्रयोग के बारे में जो झिझक और हिचकिचाहट विद्यमान है, उसे दूर करना होगा, उसे समाप्त करना होगा। स्वतंत्रता-पूर्व देसी राज्यों के अनुभवों को देखते हुए यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि न्यायपालिका में भाषिक परिवर्तन कोई कठिन कार्य नहीं है। हैदराबाद रियासत में उर्दू, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि हिन्दी राज्यों के अनेक उदाहरण हैं जहाँ अपनी-अपनी भाषा में न्याय-व्यवस्था थी।

मुग़ल शासन मे अरबी-प्रधान फारसी भाषा राजभाषा के रूप में थी, इस लिए उस काल की जनता को यह भाषा सीखनी पड़ी। बाद में इस भाषा के अपभ्रंश रूप का प्रयोग होने लगा। ब्रिटिश शासन में सन् 1882 में उत्तर और मध्य भारत में पेशावर से बिहार तक निचले न्यायालयों की कार्यालयी भाषा तो उर्दू को बना दिया गया और शेष समूचे न्यायतंत्र में पूर्णतया अंग्रेज़ी का प्रयोग प्रारंभ हो गया। दूसरा, तत्कालीन भारत में विधि, विज्ञान, चिकित्सा आदि ज्ञानानुशासनों का शिक्षा-माध्यम अंग्रेज़ी भाषा थी। इस लिए हमारे अंदर यह धारणा बैठ गई कि अंग्रेज़ी माध्यम से ही आधुनिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तीसरा, अनुवाद से अधिक समय और राशि खर्च होने की आशंका से अंग्रेज़ी को ही जारी रखने की व्यवस्था की गई। इस लिए अंग्रेज़ीवादी लोग यह तर्क देते हैं कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ इतनी विकसित नहीं हैं कि न्यायपालिका में वे सुचारु रूप से अपनी भूमिका निभा सकें। उनका यह तर्क नितांत निराधार है।

वास्तव में अंग्रेज़ी मानसिकता वाले इन लोगों का या तो मात्र बहाना है या भारतीय भाषाओं के प्रयोग में बाधा पहुँचाना है। वास्तव में भाषा अविकसित नहीं होती है, अविकसित होता है स्वयं भाषा-प्रयोक्ता और इसी लिए वह अपना दोष मढ़ देता है भाषा पर। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा कि देश के विकास और समृद्धि के लिए समूचे देश की न्याय-प्रणाली में एक ही भाषा का होना आवश्यक है और यह भूमिका कारगर ढंग से निभा सकती है हिन्दी ही। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि ब्रिटेन, फ्रांस,

स्पेन, जर्मनी, इटली, चीन, जापान, इराक, ईरान, अमेरिका आदि विकसित, समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्रों की अदालतों में अपनी भाषा का प्रयोग होता है न कि विदेशी भाषा का। पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, मारिशस आदि कुछ ऐसे देश हैं, जो भारत की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहे हैं, उनमें अंग्रेज़ी अर्थात विदेशी भाषा में कानून बनाए जाते हैं, न्यायालयों में मुकदमे की बहसों और फैसलों में भी विदेशी भाषा का प्रयोग होता है। एक कारण यह भी है कि ये देश विकसित और समृद्ध नहीं बन पाए हैं।

देश में उच्च शिक्षा की जो भाषायी स्थिति है, वही स्थिति विधि शिक्षा की भी है। इस समय देश के लगभग सभी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में विधि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी ही है। संविधान में न्याय-प्रणाली को प्रभावकारी बनाने के लिए अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी को लागू करने की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है, उसके समाधान के लिए विधि शिक्षा का माध्यम हिन्दी होना आवश्यक है। राष्ट्र की विधि प्रणाली और एकसंघीय न्याय व्यवस्था की एकात्मकता को बनाए रखने के लिए विधि शिक्षा में अंग्रेज़ी या अनेक भाषाओं के शिक्षा- माध्यम की कल्पना नहीं की जा सकती। इस लिए हिन्दी को माध्यम के रूप में प्रयोग करने से उच्च श्रेणी के विधिज्ञ पैदा होंगे। हिन्दी के प्रयोग पर आपत्ति करते हुए कुछ अंग्रेज़ी-समर्थक विशेषज्ञों का कथन है कि हिन्दी के प्रयोग से विधिज्ञ (Bar) और बेंच (Bench) का स्तर गिर जाए गा जो बिलकुल निराधार और निरर्थक सिद्ध होता है, क्योंकि स्वतंत्रता-पूर्व हैदराबाद रियासत का उत्कृष्ट उदाहरण हमारे सामने है जहाँ न्याय-प्रणाली के साथ-साथ विधि कॉलेजों में एक ही शिक्षा-माध्यम उर्दू भाषा थी। उस समय विधि कॉलेजों में कानून की पढ़ाई के अतिरिक्त सभी न्यायालयों में, जिनमें उच्च न्यायालय और ज्युडिशियल कमेटी भी शामिल थी, उर्दू भाषा का प्रयोग सफल रहा। ज्युडिशियल कमेटी हैदराबाद रियासत में एक प्रकार का उच्चतम न्यायालय था। रियासत के सभी कानून भी उर्दू में थे। इस लिए अब समय आ गया है कि भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विधि और न्याय मंत्रालय, राज्य सरकारों तथा सभी विश्वविद्यालयों को इस विषय पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

यह कितनी दु :खद स्थिति है कि भारतीय विधि मंडल (Bar Council of India) ने इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर ध्यान ही नहीं दिया। यदि हिन्दी और भारतीय भाषाओं में कानून की शिक्षा दी जाती है तो विधि स्नातक न्यायालयों में, यहाँ तक कि उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय में अपनी वकालत सुचारु रूप से कर सकें गे जो वादी और प्रतिवादी के लिए सहज, सुगम तथा संप्रेषणीय भी होगा। अनेक समितियों और आयोगों ने दृढ़ता से इस बात पर बल दिया है कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होने से छात्रों में रटंत की आदत पड़ जाए गी और मौलिक शोध, अन्वेषण तथा स्वतंत्र चिंतन-मनन करने की शक्ति क्षीण हो जाएगी।

विधि की शिक्षा के संदर्भ में संसदीय राजभाषा समिति के संकल्प की मद संख्या 19 और 24 नवंबर, 1998 के राष्ट्रपति के आदेश में भी हिन्दी माध्यम में विधि की शिक्षा के बारे में कहा गया है "हिन्दी के माध्यम से भी स्नातक स्तर और स्नातकोत्तर स्तर पर विधि की शिक्षा व्यवस्था पूरे देश में तथा अन्य विधि के क्षेत्र में कार्यरत सभी विश्वविद्यालयों, अन्य संस्थाओं को करनी चाहिए।' लेकिन शिक्षा के कर्णधारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हिंदीतर भाषी न्यायाधीश गोपाल राव एकबोटे ने तो हिन्दी और भारतीय भाषाओं का समर्थन करते हुए कहा है कि आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विधि कॉलेजों में

हिन्दी और अपनी प्रादेशिक भाषा दोनों को शिक्षा माध्यम के रूप में व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन इन दोनों शिक्षा-माध्यमों के लिए विश्वविद्यालयों को अनिवार्यत : एक-समान सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। साथ ही यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि जिन कॉलेजों में प्रादेशिक भाषा शिक्षा-माध्यम के रूप में लागू किया जाता है उनमें छात्रों को हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान देना भी ज़रूरी होगा। हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान भी देना होगा ताकि ये छात्र विधि स्नातक होने के बाद उच्चतम न्यायालय में भी वकालत कर सकें, क्योंकि उच्चतम न्यायालय में सभी न्याय-निर्णय हिन्दी में ही देने होंगे। भारतीय भाषाओं में, विशेषकर हिन्दी में विधि की पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करना होगा।

भारत के न्यायालयों में जो करोड़ों मुकदमे अधर में लटके पड़े रहते हैं, उनके प्रमुख कारणों में एक कारण अपनी भाषा में मुकदमे की सुनवाई न होना है। एक ब्रिटिश विद्वान और चिंतक जॉन स्टुअर्ट ने सही कहा है कि विलंब से दिया गया निर्णय नहीं के बराबर होता है। प्रश्न उठता है कि वादी या प्रतिवादी को उसे अपनी भाषा या अपने देश की भाषा में न्याय क्यों नहीं मिलता? लोकतंत्र में उसके अधिकार को सीमाओं में बांध रखा है जो वास्तव में उसके मौलिक अधिकारों का हनन है। जनता को जनता की भाषा में न्याय मिलना चाहिए।

स्वतंत्र न्यायपालिका के लिए स्वभाषा, क्षेत्रीय भाषा, देश की भाषा या राष्ट्र भाषा में निर्णय देने की व्यवस्था की जाए। वस्तुत : बहुभाषी राज्य में न्याय व्यवस्था के एकीकरण के लिए, विशेषकर उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के लिए विशेष दूरदर्शिता तथा सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

भारत की अधिकतर संख्या अपना भाषा-व्यवहार अपनी भाषा में करती है। फिर भी न्यायालयों की भाषा अंग्रेज़ी बनी हुई है। न्याय-व्यवस्था में पारदर्शिता की आवश्यकता रहती है। यदि अपनी भाषा में न्याय प्रक्रिया नहीं चले गी तो पारदर्शिता की अपेक्षा करना व्यर्थ है। बड़ी दु :खद स्थिति है कि अपनी भाषा इस न्यायालयों के दरवाजे के बाहर यह आशा ले कर चुपचाप खड़ी रहती हैं, शायद उसे कभी न्यायालय के अंदर बुला लिया जाएगा। यह कैसी विडंबना है कि जनता ने जिस संसद को चुना, वह संसद जनता की भाषा में कानून न बना कर विदेशी भाषा अंग्रेज़ी में बनाती है। इससे हमारे जजों और वकीलों को मनमानी करने का मौका तो मिले गा ही, साथ ही लोकतंत्र के साथ छल और धोखा भी होगा। अगर जन-सामान्य को अपनी भाषा में न्याय मिलता है तो न्यायालयों को वह बेहतर ढंग से समझ पाएगा और उसे आत्मसात कर पाए गा। अत : भाषा अभियान चलाने की आवश्यकता है, क्योंकि मातृभाषा अर्थात अपनी भाषा का कोई विकल्प नहीं हो सकता, यह वैज्ञानिक सत्य है। यूनाइटेड अरब एमीरात (यू.ए.ई) के आबूधाबी में अपने न्यायालयों के लिए अरबी, अंग्रेज़ी भाषाओं के साथ हिन्दी को तीसरी आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है, ताकि वहाँ बसे भारतीयों को सुविधा मिल सके। यह विडंबना ही है कि विदेश में प्रवासी भारतीयों को न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग करने की सुविधा मिल रही है जबकि भारत में अपने भारतीयों को ही न्यायालयों में अपनी भाषा का प्रयोग करने की सुविधा नहीं दी गई है।

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी,

1764, औट्रम लाइन्स, डॉ. मुखर्जी नगर,
(किंग्ज़्वे कैंप), दिल्ली – 110 009
Kkgoswami1942@gmail.com

साभार-
वैश्विक हिंदी सम्मेलन की वैबसाइट –www.vhindi.in
'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' फेसबुक समूह का पता-https://www.facebook.com/groups/mumbaihindisammelan/
संपर्क – vaishwikhindisammelan@gmail.com